International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 06-08-2021, Accepted: 22-08-2021, Published: 07-09-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 22-24

प्रगतिशील आन्दोलन और यशपाल

एम0 शाबान खान
शोधार्थी, पी–एच0 डी0 (हिन्दी विभाग), अलीगढ़ मुस्लिम, विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, प्रगतिशील आंदोलन और यशपाल की भूमिका को सामने लाना इस लेख का उद्देश्य है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से पहले भारत में क्रांतिकारी साहित्य का प्रायः अभाव था। हिंदी साहित्य के अन्तर्गत इतिवृत्तात्मकता और रीतिवाद को ही बढ़ावा दिया जा रहा था। लीक से हटकर मुक्त छंद में रचित रचनाओं की उपेक्षा की जाती रही थी। इसके अतिरिक्त प्रकाशकों और अंग्रेजी सरकार की नीतियों से साहित्यकार पीड़ित थे। इन सभी कारणों को उद्घाटित करते हुए प्रगतिशील लेखक संघ की आवश्यकता, स्थापना और प्रभाव का प्रस्तुत लेख में विश्लेषण किया गया है। सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनंद के प्रयासों से भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई और उसकी प्रांतीय कमेटियाँ बनीं। इससे क्रान्तिकारी साहित्य को बढ़ावा मिला। साहित्य में साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध होने लगा। जिस समय प्रलेस की स्थापना हुई थी, उस समय क्रान्तिकारी यशपाल जेल में थे। भुवाली से वापस आकर वह निरन्तर प्रलेस में अपना सहयोग देते रहे परन्तु कभी मेम्बर नहीं बने। प्रलेस के सदस्य न रहने पर भी उनका और उनके प्रकाशन 'विप्लव' का पूरा सहयोग रहा। तत्कालीन विवरण, दस्तावेज और तथ्यों के साथ इस लेख में यशपाल की भूमिका को रेखांकित किया गया है।

मूल शब्दः लेखक संघ की आवश्यकता, प्रलेस की स्थापना, साहित्य और राजनीति में युवा पीढ़ी, यशपाल की रिहाई, यशपाल की भूमिका

प्रस्तावना
अंग्रेजी की एक कहावत है कि 'आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है' यह बात भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की आवश्यकता पर फिट बैठती है। यह आवश्यकता क्या थी, इस पर रामविलास शर्मा का कथन है– ''क्या यह आन्दोलन उस समय आवश्यक था जिसका जीवन से गहरा लगाव हो। साहित्य पर ध्यान दें तो साफ दिखाई देगा कि हिंदी में निराशावाद और व्यक्तिवाद की जड़ें मजबूत हो रही थीं। बच्चन और अज्ञेय इस निराशावाद और व्यक्तिवाद के प्रतीक के रूप में सामने आए थे।''[1] छायावाद और उसके बाद के साहित्य में पुरातन काव्य–रूढ़ियों और परम्पराओं को आरोपित करने के प्रयास हो रहे थे। साहित्य में नवीन पीढ़ी रूढ़िवादियों से परेशान थी। परम्परा और लीक से हटकर कुछ लिखने पर उनकी रचनाओं की उपेक्षा होती थी। छायावाद के अंकुरण के समय 'पल्लव' और 'जूही की कली' को नकार दिया गया। इसके साथ ही प्रबन्धकाव्य परंपरा, कलावाद और परम्परागत सौन्दर्यानुभूति से परिपूर्ण कृतियों को महत्त्व दिया जा रहा था।

लेखक संघ की आवश्यकता
अंग्रेजी उपनिवेशवाद से भारतीय जनता तंग आ चुकी थी। साहित्य के क्षेत्र में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' मौजूद था, जिसमें पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार थे जो नवीनता का विरोध करते थे और पुराणपंथी तथा पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा देते थे। इसी लेखक संघ ने छायावाद का विरोध किया और 'पल्लव' को नकार दिया। 'वीर सतसई' को पुरस्कार देकर छायावाद को सिरे से खारिज कर दिया। नई पीढ़ी और चेतना के कवि–लेखक ऐसे पुनरुत्थानवादी लोगों से पीड़ित थे। सन् 1929 में साहित्य सम्मेलन में गणेश शंकर विद्यार्थी अध्यक्ष और रामवृक्ष बेनीपुरी प्रचारमंत्री चुने गए। राजनीतिक क्षेत्र में भी नई पौध आगे बढ़ रही थी। जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। इस परिवर्तन का स्वागत निराला, दिनकर और प्रेमचन्द इत्यादि ने किया। परन्तु दुर्भाग्यवश विद्यार्थी जी की कानपुर दंगे में हत्या हो गई। परिणामस्वरूप पुनरुत्थानवादियों का पुनः 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' पर कब्जा हो गया। इन पुराणपंथियों ने मुक्तछंद का विरोध किया। इन्हीं विरोधियों ने उग्र के साहित्य को घासलेटी साहित्य और प्रेमचन्द को विदेशी रचनाओं का अपहरणकर्ता कहा। ऐसे में जब प्रेमचंद और उग्र को कलंकित करने के कवायद जारी थे तो दिनकर और गुलाबरत्न वाजपेयी विरोधियों का प्रतिरोध करने के लिए सामने आए। जहाँ एक ओर परम्परा से हटकर लेखन करने वाले साहित्यकारों का विरोध हो रहा था, वहीं सम्पादकों के द्वारा पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा दिया जा रहा था। साहित्य और भाषा दोनों स्तरों पर परम्परा की पुनः स्थापना का प्रयास जारी था। इस बात से साहित्य और राजनीति में नई पीढ़ी अप्रसन्न थी। 'रत्नाकर रसिक मण्डली' के कार्यक्रम में पण्डित नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि क्लिष्ट भाषा से बचें और साहित्य को दरबारी शैली से मुक्त करें। इस भाषण को प्रेमचन्द ने नवम्बर 1930 के जागरण अंक में प्रकाशित किया। भाषण को लेकर पण्डित नेहरू का विरोध होना आरम्भ हो गया। इस तरह नई साहित्यिक चेतना का जिसने समर्थन किया, उसके ही विरोध में पुनरुत्थानवादियों, रूढ़िवादियों और सामंतवाद के पोषकों ने मोर्चा खोल दिया। इस वजह से एक ऐसे लेखक संगठन की आवश्यकता थी जो प्राचीन–भक्ति, पुराणपंथ और रूढ़िवादिता से मुक्त, निर्भय होकर नवीनता का सहयोग कर सके। इस विषय में रेखा अवस्थी का कथन है– ''प्रकाशन मंचों और साहित्यिक संगठनों पर छाए हुए 'प्राचीनताभक्त' रूढ़िवादी, दरबारी, हिन्दू पुनरुत्थानवादी आदि तत्वों की वजह से नए साहित्यिक अपना अलग संगठन बनाने की बात सोचें, अपनी विचारधारा और नई साहित्यिक अभिरूचि के प्रकाशन के लिए नई पत्रिकाओं के प्रकाशन का प्रयत्न करें सन' 30 के ज़माने में यह एक स्वाभाविक बात थी।''[2] इस तरह साहित्य में सुधार और परिवर्तन करने के लिए एक ऐसे संगठन की कमी को महसूस किया गया जो पतन से उबार सके। यह आवश्यकता सिर्फ साहित्य को ध्यान में रखकर ही नहीं हो रही थी बल्कि अंग्रेजी शासन की दमनकारी नीति भी इसका कारण थी। भारत में अंग्रेज सरकार ऐसे पत्र–पत्रिकाएँ बंद कर रही थी, जिनमें राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, समानता, समाजवाद और किसानों की समस्या आदि से सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित हो रहा था। 'आज' पत्र को बंद कर दिया गया, 'जागरण' और 'हंस' से जमानत माँगी गई। रूसी साहित्य या कोई भी दस्तावेज छापना गैर–कानूनी घोषित हो गया था। लगभग साढ़े तीन सौ पत्र–पत्रिकाओं को बंद कर दिया गया। इधर प्रकाशकों की तानाशाही और शोषण से साहित्यकार चिन्तित थे। इसका खुलासा प्रेमचन्द ने जागरण पत्र में किया था। इस दमघोटू परिवेश से निजात पाने के लिए प्रेमचन्द, रामनरेश त्रिपाठी और किशोरीदास वाजपेयी ने ट्रेड यूनियन के आधार पर लेखक संगठन बनाने का प्रयास किया। लेकिन रामचन्द्र टण्डन के संगठन की रूपरेखा को लेकर किए गए विरोध के चलते यह प्रयास असफल हो गया। इस विषैले वातावरण से साहित्यकार से लेकर राजनेता

सभी निकलना चाहते थे। इन सभी कारणों से यह आवश्यक हो गया कि लेखकों का एक संगठन होना चाहिए जो साहित्य से दरबारीपन, पुनरुत्थानवाद, बुनियादपरस्ती, पुराणपंथी, रूढ़िवाद आदि को निकालकर बाहर करे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लेखकों के जनवादी हितों की रक्षा करे। इन आवश्यकताओं ने ही 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना को अनिवार्य बना दिया।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना

रूस की सफलता ने समस्त विश्व को प्रभावित किया। समाजवाद की स्थापना के बाद लेखकों का एक बड़ा वर्ग सामने आया। इस वर्ग को संगठित करने का काम मैक्सिम गोर्की ने किया। गोर्की के नेतृत्व में ही सन् 1934 ई0 में 'सोवियत लेखक संघ' का गठन हुआ। इस लेखक संघ के अधिवेशन के अवसर पर रोम्यां रोलां, आंद्रे, जीद, हेनरी बारबूज तथा बर्नार्ड शॉ ने बधाई और समर्थन पत्र भेजे। इसी से प्रभावित होकर हेनरी बारबूज ने एक संगठन का गठन सन् 1935 में पेरिस में किया। इस संघ के अधिवेशन में विश्वविख्यात साहित्यकारों ने हिस्सा लिया। अधिवेशन में फासिज्म, उत्पीड़न और विचारों की स्वतंत्रता की रक्षा पर चर्चा हुई। इस अंतर्राष्ट्रीय लेखकों के संघ से प्रभावित होकर ही लंदन में कुछ भारतीयों ने भी संगठन बनाने पर विचार किया। इन भारतीय बुद्धिजीवियों में मुख्य रूप से सज्जाद ज़हीर थे। सज्जाद ज़हीर ने ऐसे लोगों से सम्पर्क किया, जो साम्राज्यवाद, फासिज्म और गुलामी के विरोधी थे। लंदन के चीनी रेस्त्रां में मुल्कराज आनंद, प्रमोद सेन गुप्त, डॉ0 मुहम्मद दीन 'तासीर' डॉ0 ज्योति घोष तथा सज्जाद ज़हीर आदि एकत्र होते और भारत में प्रगतिशील लेखक संघ' को स्थापित करने के लिए चर्चा करते थे। इसी चीनी रेस्त्रां में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की संग–ए–बुनियाद रखी गई। मुल्कराज आनन्द इस संघ के पहले अध्यक्ष और सज्जाद ज़हीर पहले सेक्रेटरी चुने गए। इसके बाद लेखक संघ के लिए एक मसौदा तैयार किया जो भारत में परिचित लेखकों, कवियों, शायरों, अध्यापकों और प्रकाशकों को भेजा गया। सज्जाद ज़हीर ने इस विषय में कहा है– ''इन दोस्तों में अक्सर वे नौजवान थे जो हमसे पहले हिन्दोस्तान वापस आ चुके थे और जिन्हें हम नहीं तो प्रगतिशील की हैसियत से अपना हमख्याल या हमदर्द समझते हैं।''[3] भारत में इस के मैनीफेस्टों को प्रेमचन्द ने 'हंस' में प्रकाशित किया। हंस के माध्यम से प्रेमचन्द लेखक संघ की रपटों को प्रकाशित करते रहते थे। इस संघ से लंदन के प्रवासी भारतीय जुड़ना आरम्भ हो गए, इनमें हीरेन मुखर्जी, भवानी भट्टाचार्य, इकबाल बहादुर सिंह, राजा राव और मुहम्मद अशरफ प्रमुख थे। इधर भारत में हिंदी–उर्दू के संयुक्त मंच 'हिन्दुस्तान अकादमी' के वार्षिक अधिवेशन में प्रेमचन्द, दयाराम निगम, फिराक गोरखपुरी, मौलवी अब्दुल हक, जोश मलीहाबादी जैसे बड़े साहित्यकार सम्मिलित हुए। तब तक संघ के सेक्रेट्री सज्जाद ज़हीर भारत पहुँच चुके थे। उनका उद्देश्य 'हिन्दुस्तान अकादमी' में शामिल होने वाले साहित्यकारों से हस्ताक्षर करवाना था। अतः वे भी सालाना उत्सव में शामिल हुए। सज्जाद ज़हीर इस विषय में कहते हैं– ''हमने काफी डर संकोच और झिझक के साथ बातचीत शुरू की। कुछ छोटा मुँह और बड़ी बात मालूम होती थी कि हम इन बुजुर्गों से प्रगतिशील साहित्यांदोलन के प्रस्तावित उद्देश्य और संगठन की बातचीत करें। ऐसी सूरत में मैनीफैस्टो का मसौदा हमारे बड़ा काम आया। हमने उसकी एक–एक कापी सबको पढ़ने के लिए दे दी।''[4] शिवदान सिंह चौहान के हवाले से पता चलता है कि दिसम्बर 1935 के अंतिम दिनों में इलाहाबाद में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' का गठन कर लिया गया था और इसके मैनीफेस्टो पर पंत और निराला ने भी हस्ताक्षर किये। इलाहाबाद से ही इस आन्दोलन का आरम्भ हुआ। राल्फ रसेल ने भी स्पष्ट किया है–''लंदन वाले गिरोह से भारत वापस आने वाले सज्जाद ज़हीर पहले थे। वापस आकर आते ही वे एक संगठित आन्दोलन के लिए इलाहाबाद में आधार तैयार करने में जुट गए।''[5]

सन् 1936 के अप्रैल महीने में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसी समय लेखक संघ का भी पहला अधिवेशन हुआ। कांग्रेस के सभापति पण्डित नेहरू चुने गए और प्रलेस के सभापति प्रेमचन्द चुने गए। उसी समय लखनऊ में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना हुई और उसके पहले अध्यक्ष प्रो0 एन0 जी0 रंगा बनाए गए। इस तरह साहित्य और राजनीति दोनों पर समाजवादियों का ही प्रभाव था। इसी दौरान किसान संगठन, लेखक संगठन, छात्र संगठन आदि बन रहे थे तो प्रलेस के पहले अधिवेशन को साहित्यकारों, छात्रों, राजनेताओं, किसान–मजदूर और बुद्धिजीवियों का भरपूर सहयोग मिला। अधिवेशन में प्रेमचन्द का भाषण ऐतिहासिक साबित हुआ। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में संघ के उद्देश्य उसकी महत्ता और सौन्दर्यशास्त्र पर चर्चा की। यह अधिवेशन पूर्णरूप से सफल हुआ। इस अधिवेशन में देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकार एवं विद्वान आए थे। हिंदी के लोगों में प्रेमचन्द और जैनेन्द्र ही आए थे। यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि ने इस आन्दोलन के प्रति सहयोग का आश्वासन अवश्य दिया था। अधिवेशन में शामिल होने वाले लोगों में अब्दुल अलीम, चौधरी मुहम्मद अली, सागर निजामी, अहमद अली, महमूदुज़्ज़फर, यूसुफ मेहर अली, इंदुलाल याज्ञिक, इफ्तिखार उद्दीन, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज, हसरत मोहानी तथा जयप्रकाश नारायण का नाम विशेष रूप से आता है। अधिवेशन में शामिल होने के लिए सरोजनी नायडू लखनऊ आई थीं परन्तु स्वास्थ ठीक न होने के कारण शामिल न हो सकीं। परन्तु उन्होंने अपना पत्र अवश्य भेजा, जिसे कांफ्रेंस में पढ़ा गया। अधिवेशन के बाद संगठन तेजी से हरकत में आया और इसकी बहुत–सी प्रान्तीय कमेटियाँ बनाई गईं। साथ ही इस संगठन और प्रगतिशील आन्दोलन का प्रभाव दूसरे हिंदी संगठनों पर भी पड़ा। 1936 में नागपुर में 'भारतीय साहित्य परिषद्' का अधिवेशन हुआ तो उसमें प्रेमचन्द, नरेन्द्रदेव, मौलवी अब्दुल हक, पं0 जवाहरलाल नेहरू और अख्तर हुसैन रायपुरी के हस्ताक्षर से पर्चा बाँटा गया, जिसमें साहित्यिक गतिविधियों को प्रगतिशील दिशा की ओर मोड़ने की अपील की गई। इस अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुआ वह प्रगतिशील साहित्य का समर्थन करने वाला था। परन्तु अज्ञेय ने 'विशाल भारत' में जो रिपोर्ट प्रकाशित की उससे विवाद खड़ा हो गया। प्रगतिशील आन्दोलन के प्रभाव के चलते नंददुलारे वाजपेयी ने विरोधी मंच 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के 1940 के अधिवेशन में कहा– ''आज हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य के सृजन के कौन से क्षेत्र हैं? निश्चय ही समाजवादियों के क्षेत्र। क्यों? क्योंकि उन्हीं क्षेत्रों ने इस नवीन प्रतिभा को आकर्षित कर रखा है। क्यों नहीं आज प्रचलित धार्मिक क्षेत्रों में श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाएँ और सुन्दर कला का निर्माण हो रहा है? क्यों आज वे पुराने अनुकृति से ही अथवा दूसरे नवीन क्षेत्रों की प्रगतिशील शैलियों को अपनाकर असंतोष कर रहे हैं? स्वतः नई भूमि क्यों नहीं तैयार करते हैं?''[6] बहरहाल यह आंदोलन उत्तर भारत से लेकर बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य भारत तक पहुँच गया। इसके दूसरे अधिवेशन में रविन्द्रनाथ टैगोर को सभापति बनाया गया लेकिन स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आ नहीं सके और उनका संदेश पढ़ा गया। यह संदेश ऐतिहासिक सिद्ध हुआ क्योंकि इसमें जो कहा गया, वह प्रगतिशीलता से परिपूर्ण था। उन्होंने कहा– ''जनता से अलग रहकर हम बिल्कुल अजनबी बन जाएँगे। साहित्यकारों को मनुष्यों से मिलजुल कर उन्हें पहचानना है। मेरी तरह एकांतवासी रहकर उनका काम नहीं चल सकता। मैंने एक मुद्दत तक समाज से अलग रहकर अपनी साधना में जो गलती की है, उसे समझ गया हूँ और यही वजह है कि यह संदेश दे रहा हूँ।''[7] इस संगठन और आन्दोलन का प्रभाव इतना व्यापक था कि हिन्दी में प्रगतिवाद नाम से एक युग ही बन गया। यह लेखक संघ भारतीय समाज और साहित्य को सही दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से निरन्तर अपना काम करता रहा।

यशपाल का अवदान

सन् 1936 में जब प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो रही थी तो उस समय यशपाल जेल में थे। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनने के बाद जेलमंत्री रफी अहमद किदवई के विशेष प्रयास से 2 मार्च सन् 1938 में लखनऊ जेल से यशपाल की रिहाई हुई। पंजाब–प्रवेश पर प्रतिबंध के चलते इलाज के लिए भुवाली चले गए। यशपाल जब लखनऊ रहने लगे तो प्रलेस की आयु मात्र दो वर्ष हुई थी। इसकी प्रांतीय कमेटियाँ बन चुकी थीं। इस दौरान अखिल भारतीय और प्रांतीय कमेटी की कई बैठकें और अधिवेशन हुए जिनमें यशपाल मौजूद थे। इसका विवरण मलखान सिंह सिसौदिया और मधुरेश देते हैं। प्रलेस के जिन सदस्यों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अधिवेशनों पर संस्मरण या रपटे लिखीं हैं, उन रपटों और संस्मरणों में यशपाल का नाम भी मिलता है। इस संगठन से जुड़ने वाले हिन्दी के लेखकों में शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त, अमृतराय, रामविलास शर्मा और अन्य दूसरे लेखकों के बारे में सज्जाद ज़हीर ने 'रोशनाई' में न सिर्फ परिचय दिया बल्कि उनकी भूमिका पर भी प्रकाश डाला। लेकिन इस पुस्तक में यशपाल का कहीं नाम नहीं मिलता है। यशपाल प्रलेस के कार्यक्रमों में भाग तो लेते थे परन्तु उन्हीं में जो लखनऊ में आयोजित

होते थे। इसका विवरण डॉ0 मलखान सिंह सिसौदिया देते हुए कहते हैं– ''प्रगतिशील लेखक संघ के आयोजनों में वे लखनऊ से बाहर कहीं नहीं जाते थे।''[8] उनके प्रलेस के मेम्बर होने के विषय में प्रकाशवती जी ने भी अपने संस्मरण में कोई उल्लेख नहीं किया। उन्होंने केवल इतना कहा–''यशपाल जी किसी भी पार्टी के बकायदा मेम्बर नहीं थे और प्रगतिशील विचारों से उनकी सहमति थी।''[9] यशपाल के बारे में छेदीलाल गुप्त का कथन है– ''यशपाल जी उन दिनों के लोग हैं जब प्रगतिशील साहित्यकार का काम केवल सृजन ही नहीं बल्कि, उसका प्रचार–प्रसार, विक्रय एवं प्रकाशन भी था।''[10]

सन् 1944 में जब प्रगतिशील लेखकों का दो दिवसीय आयोजन हुआ तो उसमें देश के अनेक हिस्सों से लेखकों ने भाग लिया। हिन्दी के लेखकों में शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, रामविलास शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, शिवमंगल सिंह 'सुमन', शंभुनाथ सिंह, रांगेय राघव और यशपाल उपस्थित थे। जब सन् 1944 में लखनऊ को मीटिंग के लिए चुना गया तो यशपाल इसमें सक्रिय भूमिका में थे। यह मीटिंग हीवेट रोड पर स्थिर 'विप्लव' कार्यालय में हुई। प्रलेस का जब भी कोई आयोजन लखनऊ में होता था तो यशपाल उसमें मौजूद रहते थे। यहाँ तक कि हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का कोई भी आयोजन होता था तो वह 'विप्लव' कार्यालय में आयोजित होता था। इसका विवरण कृष्णनारायण कक्कड़ देते हुए कहते हैं– ''उस समय प्रगतिशील लेखक संघ (हिन्दी) की बैठकें ज्यादातर उनके निवास पर और प्रगतिशील लेखक संघ (उर्दू) की बैठकें प्रो0 सुरूर या प्रो0 एहतेशाम के घर होती थी।''[11] इस तरह हम यह कह सकते हैं कि यशपाल प्रगतिशील लेखक संघ के किसी पद पर नहीं थे परन्तु उसमें सहभागिता अवश्य थी। ठीक वैसे ही जैसे वह स्वयं कम्यूनिस्ट पार्टी के आयोजनों में सम्मिलित होते थे लेकिन पार्टी के मेम्बर नहीं थे।

यशपाल प्रगतिशील लेखक संघ को सहयोग देने के साथ ही इस संगठन में अपना महत्त्व भी रखते थे। यहाँ तक कि छेदीलाल गुप्त ने कहा है– ''अखिल भारतीय स्तर पर प्रेमचन्द, यशपाल, रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' को आधार शिला मान लिया गया।''[12] ज़ाहिर है कि यशपाल जब इस संगठन से जुड़े तो संघ अल्पायु में था, इसलिए इस संगठन को विकसित करने में यशपाल का भी योगदान था। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रलेस के केन्द्रीय सचिव सज्जाद ज़हीर और यशपाल में पत्राचार भी होता था। सज्जाद ज़हीर उन्हें भविष्य की योजनाओं से अवगत कराते थे। अगस्त 1967 के एक पत्र में ज़हीर ने कहा–''आखिर में मैं अपनी तरफ से और साथियों की तरफ से तुम्हारा बेहद शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ कि तुमने हमारे कैम्पेन को लखनऊ में कामयाब बनाने में हमारा पूरा साथ दिया और साथ ही साथ इस बयान को तैयार करने में हम सबका नेतृत्व किया।''[13] इस तरह यशपाल प्रलेस से जुड़े रहे और हर संभव अपना सहयोग भी देते रहे।

सन् 1949 और 1950 का दौर प्रगतिशील लेखकों और कम्यूनिस्टों के लिए बुरा साबित हुआ। देशभर में गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। बहुत से लेखक और कम्यूनिस्ट गिरफ्तार हुए और शेष भूमिगत हो गए। यशपाल को भी जेल जाना पड़ा। प्रगतिशीलों का दमन सिर्फ सरकार ही नहीं कर रही थी बल्कि हिन्दुत्ववादी संगठन और अंतर्राष्ट्रीय 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम्' जैसे प्रतिक्रियावादी संगठन भी षड्यंत्र बना रहे थे। यशपाल का 'विप्लव' जो प्रगतिशील विचारों का पत्र था, उसका भी प्रकाशन बंद करा दिया गया। ऐसे में प्रगतिशील विचारों का एक पत्र 'नया पथ' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और उसके संपादन में यशपाल ने अपना सहयोग दिया। यशपाल का प्रभाव यह था कि युवा लेखक उनसे प्रभावित होते थे। यहाँ तक कि सितम्बर 1975 में जब लखनऊ में युवा लेखकों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' का पुनर्गठन किया तो उसके पहले अधिवेशन की अध्यक्षता यशपाल ने की। इसका कारण उनका प्रभावशाली लेखन और सदैव प्रगतिशील बने रहने का स्वभाव और चरित्र था। जैसा कि पहले ही कहा गया है कि यशपाल 'प्रगतिशील लेखक संघ' के लखनऊ के बाहर अधिवेशनों में नहीं जाते थे तो इसका कारण उनका स्वास्थ्य था क्योंकि बचपन में जिस असाध्य रोग ने उन्हें जकड़ा, उसने जीवनभर पीछा नहीं छोड़ा। यशपाल जब जेल से रिहा हुए तब भी सख्त बीमार थे और सीधे भुवाली सिनेटोरियों में इलाज करवाने गए थे। लखनऊ के बाहर इलाहाबाद में होने वाले अखिल भारतीय अधिवेशन में वे अवश्य सम्मिलित हुए थे। निधन से पूर्व कुछ वर्षों में यशपाल अत्यधिक अस्वस्थ रहने लगे थे। यह बात प्रलेस के सदस्य भली–भाँति जानते थे इसलिए उन्होंने बैठकों में बुलाना बंद कर दिया था। बैठकों में न बुलाए जाने के कारण उन्होंने संघ के सदस्य प्रबोध कुमार से शिकायत की थी। इस पर मजूमदार ने उन्हें बताया कि आपके अस्वस्थ होने के कारण से ही आपको नहीं बुलाया जाता है क्योंकि आपको कष्ट होगा। इस घटना को राजीव सक्सैना ने अपने लेख में कलमबद्ध किया है। यशपाल इन बैठकों में सम्मिलित न होने का अफसोस करते थे। उनकी इस पीड़ा को कम करने के लिए मजूमदार साहब बैठकों में होने वाली चर्चा का सारांश, सम्मिलित होने वाले लेखकों और रचनाओं के पाठन के विषय में बताते थे। अन्तिम समय में प्रलेस के जलसों में यशपाल का शामिल न होना उनका अस्वस्थ होना था। इस पर यदि कोई यह समझे कि यशपाल प्रलेस से अलग हो गए थे, जैसा कि दुष्प्रचार उस समय हुआ था, तो यह कोरी कल्पना और चरित्र–हनन का प्रयास मात्र होगा।

उपसंहार

'जनयुग' के फरवरी, सन् 1977 के अंक में यशपाल का एक लेख प्रकाशित हुआ था। यह लेख उन्होंने दिल्ली सम्मेलन के लिए लिखा था। लेकिन यह लेख वे पढ़ न सके इसलिए बाद में जनयुग में प्रकाशित हुआ। उन्होंने इस लेख में प्रगतिशील साहित्य की मूल मान्यताओं पर चर्चा की थी। लेख में उन्होंने साहित्यकारों को उनके कर्तव्यों का बोध करवाते हुए कहा था–'' वर्तमान समाज का साहित्यकार वर्तमान की किसी समस्या से निरपेक्ष नहीं हो सकता। आज के साहित्यकार का दायित्व जनगणना के उस यथार्थ और अपने अधिकार तथा कर्तव्य के प्रति संकेत करना है।''[14] इस तरह यशपाल सदैव प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहे और अधिवेशन में हर संभव शामिल होकर, अपने लेखन और पत्रकारिता के द्वारा असीम सहयोग भी देते रहे। उनका विप्लव प्रकाशन प्रलेस के घोषणा–पत्र और रपटों को प्रकाशित करता था। इसके अतिरिक्त प्रगतिशील साहित्य और संघ की मान्यताओं को स्थापित करने के लिए वह निरन्तर लिखते रहे। यशपाल की वैचारिक कृतियों में उनके प्रगतिशील विचार दर्ज हैं। प्रगतिशीलता जिस क्रांतिप्रेरक साहित्य की माँग करती है, उसकी रचना यशपाल ने की। यशपाल का संपूर्ण साहित्य प्रगतिशील साहित्य है।

संदर्भ सूची

1. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य–डॉ0 रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ0 238
2. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य–रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ0 24
3. रोशनाई–सज्जाद जहीर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 21
4. वही, पृ0 30
5. आलोचना, अप्रैल–जून 1986, पृ0 15
6. आधुनिक साहित्य– नन्द दुलारे वाजपेयी, भारतीय साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ0 389
7. हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन का आलेखात्मक इतिहास कर्णसिंह चौहान, नेहा प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1985, पृ0 211
8. यशपाल : पुनर्मूल्यांकन– संपादक कुँवरपाल सिंह, शिल्पायन प्रकाशन, संस्करण 2008, पृ0 22
9. उदघृत, अनुशीलन– संपादक डॉ0 वीरेन्द्र नारायण यादव, जून–दिसम्बर 2006
10. यशपालः पुनर्मूल्यांकन, पृ0 45
11. वही, पृ0 14
12. वही, पृ0 46
13. सज्जाद जहीर का पत्र (संकलित), यशपाल पुनर्मूल्यांकन, पृ0 541
14. उद्घृत क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व–संपादक मधुरेश लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1979, पृ0 298